लेखा · योग

११२. उत्तरदेयता एवं हिन्दू दान | अप्रैल २००५ / रा. चैत्र १९२७; (जून - ०६ में प्रकाशित)

इस अङ्क में

हिन्दू दान	१
तीन प्रकार के दान	१
सैद्धान्तिक रूप में दान	२
व्यवहारिक रूप में दान	३
उत्तरदेयता का स्वरूप	३
शब्दावली	४

धार्मिक दीनवत्सलता एवं उत्तरदेयता पर अपनी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए हम सर्वप्रथम हिन्दू दीनवत्सलता पर प्रकाश डालते हैं।

हिन्दू दान

हिन्दी शब्द "दान" को सटीक रूप से अँग्रेजी में "*डोनेशन*[१]" अनुवाद नहीं कर सकते हैं। अधिकांश पश्चिमी शास्त्रज्ञ इसके लिए 'उपहार' या 'अर्पण' शब्द का प्रयोग करना उचित समझते हैं।

सम्भवतः इसके लिए यह कारण रहा होगा कि आधुनिक पश्चिमी देशों में लोग दान करने के बाद भी अपनी दानराशि से सम्बन्ध रखते हैं। वे यह जानने के लिए इच्छुक रहते हैं कि उनकी धनराशि का उपयोग किस प्रकार से किया गया है। अन्य शब्दों में, वे दान देने के उद्देश्य के पूरा होने की संतुष्टि का अनुभव करना चाहते हैं।

जैसा कि मार्सल[२] ने तर्क दिया है कि कुछ अफ्रीकी समुदायों में ऐसा नहीं होता। हम यह भी जानते हैं कि दान देने वाले अधिकांश हिन्दू अपनी दानराशि के उपयोग के सम्बन्ध में चिन्तित नहीं होते या यह जाँच नहीं करते कि उसका उपयोग किस प्रकार से किया गया है। इसका क्या कारण है ?

तीन प्रकार के दान

यदि हम दान से सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन करें तो यह पाते हैं कि दाता को दान की गई वस्तु से स्वयं को पृथक कर लेना अपेक्षित होता है। तत्पश्चात् दान त्याग माँगता है या सम्पत्ति[३] सम्बन्धित सभी प्रकार के स्वामीय अधिकारों को त्यागने के लिये कहता है। यह त्याग तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि हम दान के फल से जुड़े रहेंगे।

दान के अन्य सम्बन्धित पहलू को श्री मद् भगवद् गीता में अत्यन्त स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है। तदनुसार दान तीन प्रकार के हो सकते हैः-

१. सात्विक[४]
२. राजसिक[५]
३. तामसिक[६]

[१] "डोनेशन" शब्द लैटिन शब्द "डोनम" से निकला है जो कि संस्कृत शब्द (दानम्) के समान ध्वनित होता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से "डोनेशन" एवं दान दोनों ही शब्दों का समान भारतीय-यूरोपीय मूल है (*दि अमेरिकन हैरिटेज डिक्शनरी ऑफ इंडो-यूरोपियन रूट्स्*, पृ० सं० २१)। तथापि, समय के अन्तराल में, दोनों समुदाय भिन्न-भिन्न रूप से विकसित हुए और इसके फलस्वरूप दोनों शब्दों के भिन्न-भिन्न गुणार्थ जुड़ गए।

[२] *मार्सल मॉस {एसाई सुर लि डॉन फोर्मे आकाईक् डि लिचेंज* (१९२५)} ने वर्ष १९५४ में इसका अनुवाद अँग्रेजी में "*दि गिफ्ट*" के रूप में किया।

[३] जब कोई व्यक्ति दान देता है तो दाता उस दान से सम्बन्धित अपने सभी भावुक या संवैधानिक बन्धनों को त्याग देता हैः दत्तं मन्येत यद् दत्त्वा तद् दानं श्रेष्ठमुच्यते। महाभारत, अनुशासन पर्व (१३.१.५९.४; पृष्ठ स० ५६५६)। फिर यह दान-प्राप्तकर्त्ता की सम्पत्ति बन जाती है। तत्पश्चात् दान-प्राप्तकर्त्ता उसके उपयोग से सम्बन्धित निर्णय लेगा।

[४] सात्विक पूर्णतः शुद्धता एवं अध्यात्मिकता से सम्बन्धित होता है।

[५] राजसिक पूर्णतः भौतिकवाद से सम्बन्धित होता है। यह संसार के कार्यकलापों से जुड़ा होता है।

[६] तामसिक विचार-शक्ति के अभाव से सम्बन्धित होता है।

सात्विक दान[७] उसे कहा जाता है जिसे कर्तव्य के रूप में दिया जाता है। यह समय, स्थान तथा प्राप्तकर्त्ता की उपयुक्तता पर विचार करने के पश्चात् दिया जाता है। दान-प्राप्तकर्त्ता इसके बदले में[८] कोई सेवा या कोई लाभ प्रदान नहीं करेगा। स्वामी रामसुख दास स्पष्ट[९] करते हैं कि इस प्रकार का दान ही वास्तव में त्याग होता है जिसके प्रत्युत्तर में किसी भी प्रकार की इच्छा नहीं की जाती है। इस प्रकार का दान करने वाला व्यक्ति दान की बदले[१०] में पुण्य की इच्छा नहीं रखता है। इस प्रकार के पुण्य की इच्छा करने से सात्विक-दान राजसिक-दान में परिवर्तित हो जाता है।

राजसिक दान[११] कुछ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष लाभ (भौतिक या आध्यात्मिक) प्राप्त करने के लिए किया जाता है। सम्पत्ति का स्वत्याग करने से या जब दान कुछ प्रबोधन के पश्चात् दिया जाता है (जैसे कि धन या चन्दा उद्ग्रहण के प्रकरण में होता है) तो दाता को कष्ट या दुख होता है। राजसिक दान देने से दाता जो भी लाभ प्राप्त करने की इच्छा रखकर दान देता है, वह उसे प्राप्त होता है। यह दान किसी राजनैतिक समस्या[१२] के हल के लिए भारतीय दृष्टिकोण के चार प्रकारों (साम, दान, दण्ड, भेद)[१३] में से एक प्रकार है।

जब कोई दान किसी अनुपयुक्त व्यक्ति को या समय अथवा स्थान पर विचार किये बिना दिया जाता है तो उसे तामसिक दान[१४] कहा जाता है। यदि कोई दान बिना उचित सम्मान के या अनादरजनक भाव से दिया जाता है तब भी यह तामसिक दान बन जाता है।

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमद् भागवद गीता सात्विक दान देने के लिये प्रोत्साहित करती है। तथापि, यह निष्कर्ष सम्भवतः एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में उस गुण[१५] के आधार पर भिन्न हो सकता है, जिस गुण (सात्विक, राजसिक, तामसिक) की उस समय प्रधानता थी। सत्व गुण के प्रभाव के अन्तर्गत व्यक्ति को सात्विक दान देना आकर्षित करेगा। तथापि, यदि कोई व्यक्ति राजसिक गुण के प्रभाव के अन्तर्गत होगा तो वह राजसिक दान देना पसन्द करेगा।

दान को नैमित्तिक एवं नित्य रूप में भी वर्गीकृत किया जाता है। नैमित्तिक दान राजसिक दान के समान होता है जहाँ पर एक व्यक्ति दान के बदले में कुछ प्रतिफल चाहता है। एक बार प्रतिफल मिल जाने के बाद इस प्रकार के दान का पुण्य समाप्त हो जाता है। नित्य दान सात्विक दान होता है क्योंकि यह दान एक कर्त्तव्य के रूप में किया जाता है। इस प्रकार के दान का प्रतिफल कभी भी समाप्त नहीं होता। वह शाश्वत रूप में चलता रहता है।

सैद्धान्तिक रूप में दान

धर्मग्रन्थों में किसी भी व्यक्ति की आय के विभिन्न अनुपातों को दान में देने का वर्णन किया गया है। हालाँकि व्यवहार में इन अनुपातों का अनुपालन नहीं किया जाता। परन्तु इन अनुपातों में हिन्दुओं द्वारा दिए जाने वाले दान के सम्बन्ध में रुचिकर परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत होता है।

स्कन्द पुराण[१६] में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को अपनी आय का १० वाँ भाग दान में देना चाहियेः-

न्यायोपार्जितवित्तेन दशमांशेन धीमता।

यह अन्धेरे की ओर ले जाता है।

[७] दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशेकाले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम्॥२०॥ श्रीमद् भागवद्गीता, अध्याय १७, श्लोक २०।

[८] अनुपकारी

[९] गीता प्रबोधिनी पृष्ठ सं० ४८०

[१०] एक गुणा दान, सहस्त्र गुणा पुण्य।

[११] यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः। दीयते च परिक्लष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥२१॥ श्रीमद् भागवद्गीता, अध्याय १७, श्लोक २१।

[१२] दान के सम्बन्ध में आचार्य कॉटिल्य के श्लोक (२३-२५) में वित्तीय रूप में कमजोर राजा को दान देने की पाँच विधियाँ वर्णित की गई हैंः -

लुब्धं क्षीणं वा तपस्विमुख्यावस्थापनापूर्वं दानेन साधयेत् ।२३। तत्पञ्चविधमद्देयविसर्गो गृहीतानुवर्तनमात्तप्रतिदानं स्वद्रव्यदानमपूर्वं परस्वेषु स्वयंग्राहद्दानं च।२४। इति दानकर्म ।२५। कॉटिल्य अर्थशास्त्र ९·६·२१-७३ भाग १, पृष्ठ २२७।

[१३] साम्ना दानेन भेदेन दण्डेन च पुरंदर ॥ महाभारत के शान्तिपर्व, अध्याय १०३, श्लोक ३६, पृष्ठ ४६९०।

[१४] अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते। असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥२२॥ श्रीमद् भागवत गीता, अध्याय १७, श्लोक २२।

[१५] ॲट्रिब्यूट

[१६] अठारह महापुराणों में सबसे बड़ा पुराण

कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे ॥[१७]

यह ध्यान देने योग्य बात है कि केवल सत्यनिष्ठा एवं सत्यपरायणता से अर्जित किये गये धन[१८] से ही १०%[१९] *दान* दिया जाना चाहिये।

श्रीमद् भागवत पुराण[२०] में यह कहा गया है कि व्यक्ति की आय को पाँच भागों में विभाजित किया जाना चाहियेः-

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥३७॥[२१]

एक भाग धर्म (दान आदि) के लिये तथा दूसरा भाग यश (सार्वजनिक कार्य जिससे व्यक्ति को लोकप्रियता मिलती है) के लिये उपयोग करना चाहिये, जबकि तीसरे भाग को व्यवसाय (अर्थ) में पुनः निवेशित किया जाना चाहिये और चौथे भाग को काम (भौतिक पदार्थों का आनन्द लेने के लिये) में तथा पाँचवें भाग को अपने परिवार तथा मित्रों के लिये प्रयोग में लाना चाहिये।

यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त विधि का अनुपालन करे तो उसको अपनी आय का लगभग ४०% भाग लोकोपकार[२२] पर व्यय करना होगाः २०% भाग दान के रूप में तथा अन्य २०% भाग लोकहित कार्यों जैसे- कुओं, मंदिरों, जलाशयों, बगीचों, आदि के निर्माण पर व्यय।

व्यवहारिक रूप में दान

व्यवहारिक रूप में हिन्दू दान को चार मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:-

१. देवताओं को चढ़ावा (निर्माल्य)

२. व्यक्तियों को दान

३. व्यक्तियों को दक्षिणा

४. संस्थाओं को दान

जब देवताओं को चढ़ावा[२३] चढ़ाया जाता है तो उपासक दैवीय या पावन आर्शीवाद प्राप्त करने के लिये ऐसा करता है। यह चढ़ावा या तो देवता के निजी उपयोग[२४] के लिये होता है या इसके प्रतीकात्मक भोग के पश्चात् इसे उपासक को वापस लौटा दिया जाता है। नकद के रूप मे चढ़ावे को मंदिर के रख-रखाव तथा मंदिर के कर्मचारियों के वेतन के रूप में उपयोग में लाया जाता है। कुल मिलाकर इस प्रकार के दान से उपासकों में उत्तरदेयता के प्रति कोई प्रश्न नहीं उठता है।

व्यक्तियों को दान उनके निजी उपयोग के लिये दिया जाता है। "दक्षिणा" शुल्क[२५] के रूप में होती है और वह वास्तव में दान नहीं होता। इसलिये दोनों ही प्रकरणों में उत्तरदेयता का प्रश्न ही नहीं उठता है।

संस्थाओं को दिया जाने वाला दान हिन्दू समाज में सापेक्षिक रूप से एक आधुनिक प्रसंग है। इस प्रकार के संस्थानों में मठ, आश्रम या धर्मार्थ संगठन होते हैं।

दान की यह चौथी श्रेणी है जो कि एक मात्र ऐसा क्षेत्र है जिसमें दान-प्राप्तकर्ता का दान के उपयुक्त प्रयोग के प्रति उत्तरदेयता से कुछ सम्बन्ध होता है।

उत्तरदेयता का स्वरूप

फिर हिन्दू समाज में दान के उचित ढंग से उपयोग की उत्तरदेयता को सुनिश्चित करने के लिए की किस प्रणाली को प्रयोग में लाया जाता है ? हमारे अनुसार इस सम्बन्ध में दान-प्राप्तकर्ता[२६] के

---

[१७] क्या करें, क्या न करें, पृष्ठ १०५, अनुच्छेद १

[१८] न्यायोपार्जितवित्तेन

[१९] चोरी किये गये या अन्यायपूर्ण विधि से अर्जित किये गये धन में से दिये गये दान का प्रतिफल उस धन के उपयुक्त स्वामी (जिस व्यक्ति का वास्तव में वह धन था) को मिलता है। अतः इस प्रकार के धन को दान में देने से वह शुद्ध नहीं हो सकता है।

[२०] अठारह महापुराणों में से एक जो कि सर्वाधिक प्रभावशाली तथा सबसे अधिक पठनीय है।

[२१] श्रीमद् भागवत पुराण ८.१९.३७, खण्ड १, पृष्ठ सं० ८४१।

[२२] इसके अतिरिक्त सात्विक दान को लोकोपकार नहीं मानना चाहिए, क्योंकि सात्विक दान में सम्पूर्ण त्याग अपेक्षित होता है जबकि लोकोपकार में मानव के प्रति प्रेम निर्दिष्ट किया जाता है।

[२३] यह कोई भी पदार्थ हो सकता है (फूल, फल, मिठाई, आभूषण, आदि)। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भागवत गीता में कहा है कि यदि कोई भक्ति-भाव से साधारण वस्तु जैसे कि पत्ता, फल, फूल या जल भी चढ़ाता है तो वह इसे सहर्ष स्वीकार करते हैं। पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥२६॥ श्रीमद् भागवत गीता, अध्याय ९, श्लोक २६।

[२४] आभूषण, कपड़े आदि।

[२५] हिन्दू परम्परा में ब्राह्मणों को दिये जाने वाले प्रत्येक दान के साथ दक्षिणा होनी अपेक्षित है।

[२६] पात्रता

उपयुक्त चयन पर बल दिया जाना चाहिये। यदि दान-प्राप्तकर्त्ता का चयन सावधानी पूर्वक किया गया है तो दान सफल प्रभावी[२७] होगा। फिर यह परिवीक्षण करने की आवश्यकता नहीं होगी कि वास्तव में धनराशि का उपयोग किस प्रकार से किया गया है।

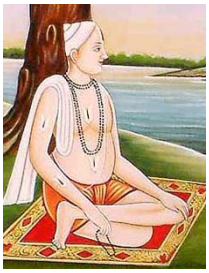

इसके अतिरिक्त स्वत्याग के पहलू को भी ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। गोस्वामी तुलसीदासजी के शब्दों में, कलियुग में दान करने की विधि[२८] की अपेक्षा स्वत्याग अधिक महत्वपूर्ण होगा।

हिन्दू मतानुसार यदि किसी व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त करना है या जन्म एवं मरण के इस दुःखद चक्र से मुक्त होना है तो उसे इस भौतिक संसार का धीरे-धीरे त्याग करना होगा। इसलिये दान करने का कार्य, इस भौतिक संसार से अपने बन्धनों को काटने के समान कार्य है।

यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त दृष्टिकोण पर विचार करे तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वह व्यक्ति दिए गए दान से स्वयं को सहजता से पृथक कर सकता है। एक बार इस स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर यह जानने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी कि उसके द्वारा दी गई दान राशि का उपयोग किस प्रकार से किया गया।

संदर्भ

१. अग्नि पुराणः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहबाद, १९९८

२. अमेरिकन हेरिटेज डिक्शॅनरी ऑफ इण्डो-यूरोपियन रूट्ज़, दि कालवर्ट वाटकिन्स, द्वितीय संस्करण, हॉटन मिफलिन कम्पनी, बॉस्टन २०००।

३. दानचन्द्रिका, पण्डित दिवाकर, खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन, मुम्बई, १९९८

४. इक्नॉमिक्स एण्ड वर्ल्डहिस्ट्रीः मिथ्स् एण्ड पैराडॉक्सेस्, पॉल बॉइरोच, यूनिर्वसिटी ऑफ शिकागो प्रेस, १९९५

५. गीता प्रबोधिनी, स्वामी रामसुखदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, २००४ (पुस्तक का कोड १५४६)।

६. गिफ्ट, दि, मार्सल मॉस, आई ए एन कुन्नीसन, लंदन द्वारा वर्ष १९५४ में अनुवादित।

७. कॉटिल्य अर्थशास्त्र, दि, आर. पी. कांगले द्वारा अनुवादित, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली, २०००।

८. क्या करें, क्या न करें, राजेन्द्र कुमार धवन, गीता प्रेस, गोरखपुर, २००२ (पुस्तक का कोड १३८१)।

९. महाभारत (छः भागों में), महर्षि वेद व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर, २००१ (पुस्तक का कोड ३२-३७)।

१०. मरियम-वेबस्टर्स एनसाइक्लोपीडिया ऑफ वर्ल्ड रिलीजनस्, मरियम वेबस्टर, मासाचूसेटस्, १९९९।

११. *पुराणिक कॉन्सेप्ट ऑफ दान*, डा० कला आचार्य, नाग पब्लिसर्स, दिल्ली, १९९३।

१२. श्रीरामचरितमानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, २००१ (पुस्तक का कोड ८२)।

१३. श्रीमद् भागवत गीता (पुस्तक का कोड १७) गीता प्रेस, गोरखपुर, ५० वाँ संस्करण, संवत २०५९।

१४. श्रीमद् भागवत महापुराण, महर्षि वेद व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर, २००३ (पुस्तक का कोड २६-२७)।

१५. *वर्ल्ड इकॉनॉमी, दिः मिलियानियल प्रस्पैक्टिव, एन्गॉस मैडीसन् एण्ड अदर्स्, ओ० ई० सी० डी०*, २००१।

शब्दावली

स्वामीय - प्रोपराईटेरी
दीनवत्सलता - चैरिटि
अनादरजनक - इन्सल्टिंग्
प्रबोधन - पर्स्वेशन्
स्वत्याग - रिलिन्क्विशमेण्ट्

लेखा·योग हर माह प्रकाशित होता है। इसमें जन-सेवी संस्थाओं के नियमन व लेखा प्रणाली से सम्बन्धित विषयों पर चर्चा की जाती है। यह विभिन्न जन-सेवी संस्थाओं, दातव्य संस्थाओं, व अङ्केक्षण प्रतिष्ठानों (ऑडिट फर्म) में लगभग २७०० व्यक्तियों को वितरित किया जाता है। लेखा·योग के प्रत्युत्पादन या पुनर्वितरण को अकाउण्टएड इण्डिया प्रोत्साहित करता है यदि ऐसा अव्यवसायिक उद्देश्य से किया जाए एवं इनके स्रोत को अभिस्वीकार किया जाए।

आँग्ल भाषा में लेखा·योग - This issue of Lekha·Yog is available in English as AccountAble.

लेखा·योग का वाभ-स्वरूप - लेखा·योग के सभी पुराने अङ्कों के आँग्ल संस्करण (AccountAble) हमारे वाभ-स्थल www.AccountAid.net पर उपलब्ध हैं। चयनित लेखा·योग अङ्कों का वाभस्वरूप भी वहीं उपलब्ध है।

प्रत्याख्यान (डिसक्लेमर) - हम यह मानते हैं कि किसी भी धर्म की विभिन्न धार्मिक जटिलताओं का प्रमाणिक निर्वचन उस धर्म के आचार्य या उसमें विश्वास रखने वाले ही कर सकते हैं। यहाँ पर प्रस्तुत की गई विभिन्न धार्मिक प्रकियाओं का सिंहावलोकन केवल सामान्य जानकारी के लिए है और इसका प्रयोजन किसी भी मत का अनादर अथवा खण्डन करना नहीं है।

पत्राचार - आपके प्रश्नों और सुझावों का स्वागत है। हमारा पता है - अकाउण्टएड इण्डिया, ५५-बी, खण्ड सी, सिद्धार्थ विस्तार, नई दिल्ली-११० ०१४; दूरभाष - ०११-२६३४ ३१२८; दूरभाष / प्रतिरूप प्रेषिका - २६३४ ६०४१; ई-प्रेष - accountaid@vsnl.com; accountaid@gmail.com

© AccountAid™ India विक्रम संवत् आषाढ़ २०६३; जून २००६ ईस्वी।

---

[२७] सफल

[२८] जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान ॥१०३ख॥
(७, १०३, ब) पृष्ठ ८७३, श्री राम चरित मानस।